अप्पोदया की दृष्टि से नय विवेचन एवं नय की दृष्टि में विषय वस्तु का औचित्य

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़ सागर
(राष्ट्रपति सम्मानित)
महामंत्री – प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
संयुक्त मंत्री – अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

जिस पदार्थ का अस्तित्व है वह द्रव्य है। **सद् द्रव्यलक्षणम्।** प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ये तीन गुण पाए जाते हैं। जो पदार्थ की तीनों अवस्थाओं को जाना है वह प्रमाण है और जो एक-एक रूप से पदार्थ की अवस्था जान रहा है वह नय है। दोनों सत्य है। दोनों की प्रमाणिकता है। एक वस्तु के समग्र स्वरूप को जान रहा है और वस्तु के एक अंश को जान रहा है। जब वस्तु के एक अंश जानता है तो शेष अंश वहां उदासीन हो जाते हैं, प्रमुखता उसी अंश की हो जाती है। जैसे – यह घट है। प्रमाण घट की समग्रता का जान रहा है उसकी लंबाई, चौड़ाई, बनावट, मिट्टी, रंग आदि। लेकिन नय मात्र घट का जान रहा है। यह घट है। वस्तु अनेक धर्म वाली है अर्थात् वस्तु में अनेक धर्म या उसकी अवस्थाएं पायी जाती है जिसे प्रमाण और नय से जाना जाता है। नय के विपरीत दुर्नय है। नय और दुर्नय में निषेध और उदासीनता का अंतर है। **दुर्नय पदार्थ में जो अभीष्ट है उसे ग्रहण करता है और शेष के लिए निषेध करता है और नय जो पदार्थ इष्ट है उसे ग्रहण करता है शेष के प्रति उदासीन होता है अर्थात् शेष गौण हो होते हैं।** नय और प्रमाण में अंश एवं समग्रता का भेद है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण अंतर है **स्यात्**(कथंचित्) शब्द का। नय में स्यात् शब्द है प्रमाण में शब्द नहीं है। प्रमाण कहता है घट है। नय ने कहता – स्यात् यह घट है तब प्रमाण कहता है –घट है। नय ने कहा – स्यात् घट है स्यात् मिट्टी है।अर्थात् प्रमाण समग्रता का नाम है लेकिन समग्रता के मायने हैं जो वस्तु के सभी अंशों को ग्रहण करें, पृथक्-पृथक् भी और एक साथ भी।

वस्तु की सापेक्षता और निरपेक्षता, इन दोनों से नय और प्रमाण की सिद्धि होती है। नय वस्तु का सापेक्ष मानता है और प्रमाण निरपेक्ष। नय घट मान रहा है और यह पदार्थ के प्रति नय की सापेक्षता है और प्रमाण घट के समग्र स्वरूप मिट्टी, लंबाई चौडाई, रंग आदि को जान रहा है वह एक अंश के प्रति सापेक्ष नहीं है प्रमाण पदार्थ के प्रत्येक अंश के प्रति निरपेक्ष है। जैन दर्शन में नय से ही वस्तु के विभिन्न पक्षों का ज्ञान होता है, जो अनेकांतवाद के सिद्धांत का आधार है। नय विभिन्न दृष्टिकोणों से

वस्तु को समझने और उसके अनेक धर्मों को ग्रहण करने की क्षमता देता है। पूर्ण और त्रुटिरहित ज्ञान नय के अंतर्गत नहीं आता, बल्कि प्रमाण के अन्तर्गत आता है।

नय एक ऐसी वस्तु विवक्षा और व्यवस्था है जो वक्ता के अभिप्राय को समझाती है। वक्ता का अभिप्राय नय की अपेक्षा से होता है। वह समग्र रूप से किसी भी विषय का प्रस्तुति करण नहीं कर रहा है। वह वस्तु सापेक्षता की दृष्टि से कथन कर रहा है। इसलिए उसके अभिप्राय को समझना ही नय है। कहा गया है –

को नयो नाम। ज्ञातुरभिप्रायो नयः। अभिप्राय इत्यस्य कोऽर्थः। प्रमाणपरिगृहीतार्थैकदेशवस्त्वध्यवसाय : अभिप्रायः। युक्तितः प्रमाणात् अर्थपरिग्रहः द्रव्यपर्याययोरन्यतरस्य अर्थ इति परिग्रहो वा नयः। प्रमाणेन परिच्छिन्नस्य वस्तुन : द्रव्ये पर्याये वा वस्त्वध्यवसायो नय इति यावत् ।[1]

प्रश्न - नय किसे कहते हैं ?

उत्तर - ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं।

प्रश्न – अभिप्राय इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर- प्रमाण से गृहीत वस्तु के एक देश में वस्तु का निश्चय ही अभिप्राय है। (स्पष्ट ज्ञान होने से पूर्व तो) युक्ति अर्थात् प्रमाण से अर्थ के ग्रहण करने अथवा द्रव्य और पर्यायों में से किसी एक को ग्रहण करने का नाम नय है। (और स्पष्ट ज्ञान होने के पश्चात्) प्रमाण से जानी हुई वस्तु के द्रव्य अथवा पर्याय में अर्थात् सामान्य या विशेष में वस्तु के निश्चय को नय कहते हैं, ऐसा अभिप्राय है।

आचार्यश्री अमितगति महाराज के द्वारा योगसार प्राभृत की रचना की गई। इस महान ग्रन्थ पर आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज ने अप्पोदया नामक टीका की है। आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज के ज्येष्ठ-श्रेष्ठ आचार्य हैं। जिनकी साहित्य सृजना अद्वितीय है। उन्होंने यह टीका प्राकृत भाषा में की है। हम यहाँ अप्पोदया की दृष्टि से नय विवेचन एवं नय की दृष्टि में विषय वस्तु का औचित्य इस विषय पर अपना शोधालेख प्रस्तुत कर रहे हैं।

नय का लक्षण – नय के ल क्षण को हम यहाँ पाँच भागों में विभाजित करेंगे –

1. **नय का सामान्य लक्षण**
2. **वक्ता का अभिप्राय**
3. **एकदेश वस्तुग्राही**
4. **प्रमाण गृहीत वस्तु का एक अंश ग्राही**
5. **श्रुतज्ञान का विकल्प**

[1] धवला ९/४,१,४५/१६२/७

1. नय का सामान्य लक्षण –

उच्चारियमत्थपदं णिक्खेवं वा कयं तु दट्ठूण।
अत्थं णयंति पच्चंतमिदि तदो ते णया भणिया ।।3।
णयदि त्ति णयो भणिओ बहूहि गुण-पज्जएहि जं दव्वं।
परिणामखेत्तकालं-तरेसु अविणट्ठसबभावं ।।४। [2]

उच्चारण किये अर्थ, पद और उसमें किये गये निक्षेप को देखकर अर्थात् समझकर पदार्थ को ठीक निर्णय तक पहुँचा देता है, इसलिए वे नय कहलाते हैं ।।3। अनेक गुण और अनेक पर्यायों सहित, अथवा उनके द्वारा, एक परिणाम से दूसरे परिणाम में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में और एक काल से दूसरे काल में अविनाशी स्वभाव रूप से रहने वाले द्रव्य को जो ले जाता है, अर्थात् उसका ज्ञान करा देता है, उसे नय कहते हैं ।।3।[3]

जीवादीन् पदार्थान् नयन्ति प्राप्नुवन्ति, कारयन्ति, साधयन्ति, निर्वर्तयन्ति, निर्भासयन्ति, उपलम्भयन्ति, व्यञ्जयन्ति इति नयः।[4]

जीवादि पदार्थों को जो लाते हैं, प्राप्त कराते हैं, बनाते हैं, अवभास कराते हैं, उपलब्ध कराते हैं, प्रगट कराते हैं, वे नय हैं।[5]

नानास्वभावेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीति वा नयः।[6]

नाना स्वभावों से हटाकर वस्तु को एक स्वभाव में जो प्राप्त कराये उसे नय कहते हैं।

नीयते एकदेशविशिष्टोऽर्थ : प्रतीतिविषयमाभिरिति नीतयो नयाः।[7]

जिस नीति के द्वारा एकदेश विशिष्ट पदार्थ लाया जाता है अर्थात् प्रतीति के विषय को प्राप्त कराया जाता है, उसे नय कहते हैं।[8]

2. **वक्ता का अभिप्राय –** सम्यग्ज्ञान को प्रमाण और ज्ञाता के हृदय के अभिप्राय को नय कहते हैं।[9] सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं। [10] ज्ञाता के अभिप्राय को

---

[2] धवला 1/1,1,1/ 3,4/10
[3] कषाय पाहुड 1/13-14/210/गाथा118/259
[4] तत्त्वार्थाधिगमभाष्य/1/35
[5] आलाप पद्धति/181
[6] (नयचक्र श्रुत भवन दीपक/पृष्ठ १) (नयचक्रवृत्ति/पृष्ठ ५२६) (नयचक्रवृत्ति/सूत्र ६) (न्यायावतार टीका/पृष्ठ ८२), (स्याद्वाद मंजरी/२८/३१०/१०)।
[7] स्याद्वाद मंजरी/27/305/28
[8] स्याद्वाद मंजरी/28/307/15
[9] णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदियभावत्थो ।।83 ।तिलोय पण्णत्ति/1/38, सिद्धि विनिश्चय/मूल/१०/२/६६3

नय कहते हैं।[11] प्रतिपक्षी अर्थात् विरोधी धर्मों का निराकरण न करते हुए वस्तु के एक अंश या धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञाता का अभिप्राय नय है।[12] वक्ता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं।[13]

3. **एकदेश वस्तुग्राही – अनेकान्तात्मक वस्तु में विरोध के बिना हेतु की मुख्यता से साध्य विशेष की यथार्थता को प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग को नय कहते हैं।[14] अनन्तपर्यायात्मक वस्तु की किसी एक पर्याय का ज्ञान करते समय निर्दोष युक्ति की अपेक्षा से जो दोष रहित प्रयोग किया जाता है वह नय है।[15] अपने को और अर्थ को एकदेशरूप से जानना नय का लक्षण माना गया है।[16] वस्तु के अंश को ग्रहण करने वाला नय होता है।[17] वस्तु की एकदेश परीक्षा नय का लक्षण है।[18] नाना धर्मों से युक्त भी पदार्थ के एक धर्म को ही नय कहता है, क्योंकि उस समय उस ही धर्म की विवक्षा है, शेष धर्म की विवक्षा नहीं है।[19]दो विरुद्धधर्मवाले तत्त्व में किसी एक धर्म का वाचक नय होता है।[20]**
4. **प्रमाण गृहीत वस्तु का एक अंश ग्राही – साधर्मी का विरोध न करते हुए, साधर्म्य से ही साध्य को सिद्ध करने वाला तथा स्याद्वाद से प्रकाशित पदार्थों की पर्यायों को प्रगट करने वाला नय है।[21] आगम में ऐसा कहा है कि वस्तु को प्रमाण से जानकर अनन्तर किसी एक अवस्था द्वारा पदार्थ का निश्चय करना नय है।[22] प्रमाण द्वारा प्रकाशित किये गये पदार्थ का विशेष प्ररूपण करने वाला नय है।[23]**

---

[10] ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः।११। धवला १/१,१,१/ ११/१७, लघीयस्त्रय/का. 52); (लघीयस्त्रय स्ववृत्ति/का.30); (प्रमाण संग्रह/श्लोक 86); (कषाय पाहुड1/10-14/168/श्लोक 75/200) (धवला 3/१,२,२/ १५/१८) (धवला ९/४,१,४५/१६२/७) (पंचास्तिकाय संग्रह/तात्पर्य वृत्ति/४3/८६/१२)।

[11] ज्ञातुभिप्रायो वा नयः। आलाप पद्धति/181, नयचक्रवृत्ति/१७४) (न्याय दीपिका/ */८२/१२५)।

[12] अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नयः। प्रमेयकमलमार्तण्ड/पृ.६७६

[13] प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नय इति। प्रमाणनय तत्त्वालंकार/७/१ (स्याद्वाद मंजरी/२८/3१६/२९ पर उद्धृत), (स्याद्वाद मंजरी/२८/*१०/१२)।

[14] वस्तन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणः प्रयोगो नयः। सर्वार्थसिद्धि/१/**/१४०/७, (हरिवंश पुराण/५८/*९)।

[15] अनन्तपर्यायात्मकस्य वस्तुनोऽन्यतमपर्यायाधिगमे कर्तव्ये जात्युक्त्यपेक्षो निरवद्यप्रयोगो नयः। सारसंग्रह से उद्धृत (कषाय पाहुड १/१ *-१४/२१०/१, (धवला ९/४,१,४५/१६७/२)।

[16] स्वार्थैकदेशनिर्णीतिलक्षणो हि नयः स्मृतः।४। श्लोक वार्तिक २/१/६/४/*२१, श्लोक वार्तिक २/१/६/१७/*६०/११)

[17] वत्थुअंससंगहणं। तं इह णयं...। नयचक्रवृत्ति/१७४, (नयचक्र वृत्ति/१७२) (कार्तिकेय अनुप्रेक्षा/मूल/२६*)।

[18] वस्त्वेकदेशपरीक्षा तावन्नयलक्षणं। प्रवचन सार/तात्पर्य वृत्ति/१८१/२४५/१२, (पंचास्तिकाय संग्रह/तात्पर्य वृत्ति/४६/८६/१२)।

[19] णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं। तस्सेय विवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं।२६४। कार्तिकेय अनुप्रेक्षा/मूल/२६४

[20] इत्युक्तलक्षणेऽस्मिन् विरुद्धधर्मद्वयात्मके तत्त्वे। तत्राप्यन्यतरस्य स्यादिह धर्मस्य वाचकश्च नयः। पंचास्तिकाय संग्रह/पू./५०४

[21] सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः। स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः।१०६। आप्त मीमांसा/१०६, (धवला ९/४,१,४५/गाथा ५९/१६७) (कषाय पाहुड १/१ *-१४/१७४/८ */२१०-तत्त्वार्थभाष्य से उद्धृत)।

[22] एवं ह्युक्तं प्रगृह्य प्रमाणतः परिणतिविशेषादर्थावधारणं नयः। सर्वार्थसिद्धि/१/६/२०/७

[23] प्रमाणप्रकाशितार्थविशेषप्ररूपको नयः। राज वार्तिक/१/**/१/९४/२१, (श्लोक वार्तिक४/१/**/श्लोक ६/२१८)।

प्रमाण के द्वारा संगृहीत वस्तु के अर्थ के एक अंश को नय कहते हैं।[24] श्रुतज्ञान प्रमाण से जाने हुए पदार्थों का एक अंश जानकर अन्य अंशों के प्रति उदासीन रहते हुए वक्ता के अभिप्राय को नय कहते हैं।[25] प्रमाण के द्वारा ग्रहण की गयी वस्तु के एक अंश में वस्तु का निश्चय करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।[26] प्रभाचन्द्र भट्टारक ने भी कहा है–प्रमाण के आश्रित परिणाम भेदों से वशीकृत पदार्थ विशेषों के प्ररूपण में समर्थ जो प्रयोग हो है वह नय है। उसी को स्पष्ट करते हैं–जो प्रमाण के आश्रित है तथा उसके आश्रय से होने वाले ज्ञाता के भिन्न -भिन्न अभिप्रायों के आधीन हुए पदार्थ विशेषों के प्ररूपण में समर्थ है, ऐसे प्रणिधान अर्थात् प्रयोग अथवा व्यवहार स्वरूप प्रयोक्ता का नाम नय है।[27] प्रमाण से निश्चित किये हुए पदार्थों के एक अंश ज्ञान करने को नय कहते हैं। अर्थात् प्रमाण द्वारा निश्चय होने जाने पर उसके उत्तरकालभावी परामर्श को नय कहते हैं।[28]

5. **श्रुतज्ञान का विकल्प – श्रुतज्ञान को मूल कारण मान कर ही नय ज्ञानों की प्रवृत्ति होना सिद्ध माना गया है।[29] श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं।[30]**

नय के भेद -

- नैगम, संग्रह, व्यवहार , ऋजुसूत्र, शब्द , समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं।[31]
- उस (नय) के दो भेद हैं–द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक।[32]
- सब नयों के मूल दो भेद हैं–निश्चय और व्यवहार।[33]

---

[24] प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थैकांशो नयः। आलाप पद्धत्ति/९, (नयचक्र/श्रुत/पृष्ठ २)। (न्याय दीपिका/ */८२/१२५/७)।

[25] नीयते येन श्रुताख्यानप्रमाणविषयीकृतस्य अर्थस्य अंशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः इति। प्रमाणनयतत्त्वालंकार/७/१ से स्याद्वादमंजरी/२८/*१६/२७ पर उद्धत, (नय रहस्य/पृ.७१); (जैन तर्क/भाषा/पृष्ठ २१) (नय प्रदीप/यशोविजय/पृष्ठ ९७)।

[26] प्रमाणपरिगृहीतार्थैकदेशे वस्त्वध्यवसायो नयः। धवला १/१,१,१/८*/९, (धवला ९/४,१,४५/१६*/१) (कषायपाहुड १/१*-१४/१६८/१९९/४)।

[27] तथा प्रभाचन्द्रभट्टारकैरप्यभाणि-प्रमाणव्यपाश्रयपरिणामविकल्पवशीकृतार्थविशेषप्ररूपणप्रवणः प्रणिधिर्यः स नय इति। प्रमाणव्यपाश्रयस्तत्परिणामविकल्पवशीकृतानां अर्थविशेषाणां प्ररूपणे प्रवणः प्रणिधानं प्रणिधिः प्रयोगो व्यवहारात्मा प्रयोक्ता वा स नयः। धवला ९/४,१,४५/६, (कषाय पाहुड १/१*-१४/१७५/२१०)।

[28] प्रमाणप्रतिपन्नार्थैकदेशपरमर्शो नयः।...प्रमाणप्रवृत्तेरुत्तरकालभावी परामर्श इत्यर्थः। स्याद्वाद मंजरी /२८/*१०/९

[29] श्रुतमूला नयाः सिद्धा...। श्लोक वार्तिक २/१/६/श्लोक २७/*६७

[30] श्रुतविकल्पो वा (नयः)।   आलाप पद्धत्ति /९, (नयचक्रवृत्ति/१७४) (कार्तिकेय अनुप्रेक्षा /मूल/२६*)।

[31] नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः। तत्त्वार्थ सूत्र /१/**, (हरिवंश पुराण /५८/४१), (धवला १/१,१,१/८०/५), (नयचक्रवृत्ति/१८५), (आलाप पद्धत्ति/५); (स्याद्वाद मंजरी/२८/*१०/१५)

[32] स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति। सर्वार्थसिद्धि /१/**/१४०/८
(सर्वार्थसिद्धि/१/६/२०/९), (राज वार्तिक /१/१/२/४/४), (राज वार्तिक/१/**/१/९४/२५), (धवला १/१,१,१/८*/१०); (धवला.९/४,१,४५/१६७/१०), (कषाय पाहुड १/१*-१४/१७७/२११/४), (आलाप पद्धत्ति/५/गाथा ४), (नय चक्र वृत्ति/१४८), (समयसार/आत्मख्याति/१*/कलश ८ की टीका), (पंचास्तिकाय/तत्त्व प्रदीपिका/४), (स्याद्वाद मंजरी/२८/*१७/१)

[33] णिच्छयववहारणया मूलभेयाण ताण सव्वाणं। आलाप पद्धत्ति/५/गाथा ४, नय चक्र वृत्ति/१८*

- **वस्तु का एक धर्म अर्थात् 'अर्थ इस धर्म का वाचक शब्द और उस धर्म को जानने वाला ज्ञान ये तीनों ही नय के भेद हैं।**[34]
- **द्रव्य नय और भावनय के भेद से नय दो प्रकार का है।**[35]
- **वस्तु के एक-एक धर्म को आश्रय करके नय के संख्यात , असंख्यात व अनन्त भेद हैं।**

अप्पोदया की दृष्टि से नय विवेचन – **आचार्यश्री अमितगति महाराज ने योगसारप्राभृत की रचना संस्कृत भाषा में की है। जिसके श्लोकों का प्राकृत रूपान्तरण और प्राकृत टीका आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज के परम शिष्य आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा की गई है। आचार्यरी ने सम्पूर्ण टीका में नयों की दृष्टि से कथन किया है लेकिन विशेषत: तीन स्थानों पर नयों का कथन प्राप्त होता है। सर्वप्रथम द्वितीय अधिकार के श्लोक क्रमांक 6 जहाँ पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की चर्चा की गई है। दूसरे नम्बर पर तीसरे आस्रव अधिकार में श्लोक क्रमांक 7 में नयविभाग से आत्म का कर्तापना इस विषय पर चर्चा की गई है। तीसरे नम्बर पर पांचवे संवर अधिकार में उभयनय से प्रकट भेदज्ञान संवर को देता है एवं पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कर्म कर्ता भोक्ता विषय पर चर्चा की गई है।**

योगसारप्राभृत के द्वितीय अधिकार की छटवीं गाथा में आचार्य कहते हैं –

ध्रौव्योत्पादलयालीढा सत्ता सर्वपदार्थगा।
एकशोऽनंतपर्याया प्रतिपक्षसमन्विता।।6।।[36]

सत्ता उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक, सर्व पदार्थ स्थित, एक से लेकर अनंत पर्यायमय और प्रतिपक्ष सहित है। वह इसप्रकार है – सत् अस्तित्व को कहते हैं । सत् का भाव ही सत्ता है। पर्यायार्थिक नय से एक समय में सत्ता उत्पाद -व्यय -ध्रौव्यात्मक है तो भी द्रव्यार्थिकनय से सत्ता एक लक्षणवाली है। सत्ता द्रव्य का लक्षण है। श्री सर्वार्थसिद्धि जी में कहा है-

चेतनाचेतन सभी द्रव्य अपनी जाति को न छोड़ते हुए भी अंतरंग - बहिरंग अर्थात् उभयनिमित्त के वश प्रतिसमय नवीन अवस्था को प्राप्त होते हैं वह उत्पाद है, जैसे मिट्टी की घड़ा पर्याय । तथा उसी द्रव्य की पूर्व पर्याय का विघटना व्यय है, जैसे - घड़ा पर्याय की उत्पत्ति के काल में मिट्टी के पिण्डरूप पर्याय का विनाश तथा जो अनादि पारिणामिक स्वभाव है वह व्यय-उत्पादरूप न होकर ध्रुवता रूप

---

[34] **सो च्चिय एक्को धम्मो वाचयसद्दो वि तस्स धम्मस्स। जं जाणदि तं णाणं ते तिण्णि वि णय विसेसा य। कार्तिकेय अनुप्रेक्षा/मूल/२६५**
[35] **द्रव्यनयो भावनयः स्यादिति भेदाद्द्विधा च सोऽपि यथा। पंचाध्यायी/पूर्वार्ध/५०५**
[36] धोव्वोप्पादलयालीढा सत्ता सव्वपयत्थगा।
एगसो णंतपज्जाया पडिवक्खसममिण्णदा।।6।।

होने से ध्रौव्य है।[37] जैसे – मिट्टी की पिण्ड तथा घड़ारूप अवस्था में मिट्टी का अन्वयरूप होना । यह सत्ता स्वभाव से है, भिन्न सत्ता के समवाय से नहीं है।

प्रश्न – तीन लक्षणवाला होने पर भी सत् का लक्षण सत्ता क्यों कहा है ?

समाधान – उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ऐसा वचन होने से सत् का लक्षण सत्ता कहा है। यह सत्ता सर्वपदार्थ स्थित है अर्थात् सत्ता स्वरूप-अस्तित्व से भिन्न-भिन्न लक्षणवाले चेतनाचेतन मूर्त-अमूर्त पदार्थों का एक अखण्ड लक्षण है।

प्रश्न – वह अखण्ड लक्षण क्या है ?

समाधान – महासत्तारूप अखण्ड लक्षण है। यह संकर-व्यतिकर दोषों से रहित अपनी जाति का विरोध नहीं करनेवाले **शुद्धसंग्रहनय** से सभी पदार्थों में व्यापक है। जैसे- 'यह वन है' ऐसा कहने पर अपनी-अपनी जाति के भेद से भिन्न-भिन्न नीम, आम आदि वृक्षों का एक साथ ग्रहण होता है, उसी प्रकार सर्व को सत्ता, ऐसा कहने पर शुद्धसंग्रहनय से सादृश्य-अस्तित्व को सूचित करने वाली महासत्ता जाति के अविरोधरूप से सर्वपदार्थ स्थित है।

पर्यायार्थिकनय से सत्ता त्रिकाल उत्पाद - व्ययरूप होने से अनन्त पर्यायस्वरूप है, अतः एक से लेकर अनन्त पर्यायरूप सत्ता द्रव्य से अविनाशी भी है। यह सत्ता सप्रतिपक्ष स्वभाववाली है, अर्थात् प्रतिपक्ष से विरोध नहीं रखती। शुद्ध संग्रहनय की विवक्षा में एक महासत्ता है, अशुद्ध संग्रहनय की विवक्षा में या व्यवहारनय की विवक्षा में सर्व पदार्थों में रहने वाली सविश्वरूप अवान्तर सत्ता है, यह प्रतिपक्ष है। स्वद्रव्यादि चतुष्टयरूप सत्ता के लिए परद्रव्यादि चतुष्टयरूप असत्ता प्रतिपक्ष है। अतः सत्ता को असत्ता, त्रिलक्षण को एकलक्षणपना, एक को अनेकपना, सर्वपदार्थ स्थित को एकपदार्थ स्थित, सविश्वरूप को एकरूप तथा अनन्त पर्यायमय को एक पर्यायमयपना सप्रतिपक्ष है, ऐसा कहा है ।।6।।

अह पज्जयत्थिगदव्वत्थिगणयेहिं च पयत्थस्स उप्पादवयं दरिसज्जदि-

नश्यत्युत्पद्यते भावः पर्यायापेक्षयाखिलः ।
नश्यत्युत्पद्यते कश्चिन्न द्रव्यापेक्षया पुनः ॥ 7 ॥
णस्सदि जायदे भावो पज्जायेणाखिलो खलु ।

[37] चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद् भावान्तरावाप्तिरुत्पादनमुत्पादः मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् । तथा पूर्वभावविगमनं व्ययः । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः । अनादि- पारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावाद् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवः । ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । सर्वार्थसिद्धि

णस्सदि जायदे कोई दव्वावेक्खाए णो पुणो ॥ 7 ॥

अब पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिकनय से पदार्थ का उत्पाद - व्यय दिखाते हैं -

अर्थ – पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा समस्त पदार्थ नष्ट होते हैं और उत्पन्न होते हैं, किन्तु द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा न कोई पदार्थ नष्ट होता है न उत्पन्न होता है ॥ 7 ॥

वह इसप्रकार है प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद - व्यय - ध्रौव्यरूप सहज स्वभाव पाया जाता है इस सहज-स्वभाव को पर्यायनय तथा द्रव्यनय की अपेक्षा से जाना जाता है। पर्यायनय वस्तु के परिणमन को तथा द्रव्यनय वस्तु के ध्रौव्य को अर्थात् त्रिकालस्थित सत् को विषय करता है। इसलिए जो उत्पाद और व्यय पदार्थ में देखा जाता है, वह पर्यायनय की अपेक्षा से पर्याय में पाया जाता है अर्थात् पर्याय का उत्पाद तथा पर्याय का विनाश होता है। वर्तमानपर्याय का उत्पाद तथा पूर्वपर्याय का विनाश होता है।

पुनः कश्चित् – पुनः कोई पदार्थ । न नश्यत्युत्पद्यते न नष्ट होता है न उत्पन्न होता है। ऐसा किस अपेक्षा से है ? द्रव्यापेक्षया द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा ऐसा होता है। वह इसप्रकार है यद्यपि पदार्थ उत्पाद - व्यय - ध्रौव्य लक्षणवाला है, तो भी द्रव्य- गुण- पर्यायरूप होने से उत्पाद और व्यय पर्याय का स्वभाव है तथा ध्रौव्यपना द्रव्य का स्वभाव है।

इसलिए द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा पदार्थ न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है, अपितु त्रिकाल अपने द्रव्यस्वभाव से अवस्थित होता है। फिर यदि द्रव्य का उत्पाद - व्यय होने लग जाये तो सत् का विनाश हो जायेगा, किन्तु ऐसा होना असंभव है अर्थात् सत् का विनाश नहीं होता । अतः द्रव्यार्थिकनय से पदार्थ न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है, किन्तु पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्यय पदार्थ में पाया जाता है, ऐसा कहा है ।। 7 ।।

अह णिच्छयणएण दव्वगुणपज्जयाणं अभेदत्तं दाएज्ज

किञ्चित् सम्भवति द्रव्यं न विना गुणपर्ययैः ।
सम्भवन्ति विना द्रव्यं न गुणा न च पर्ययाः ॥ 8 ॥
किंचि संभवदि दव्वं गुणपज्जेहि णो विणा ।
संभवंति विणा दव्वं ण गुणा ण य पज्जया ॥8॥

अब निश्चयनय से द्रव्य-गुण- पर्यायों का अभेदपना दिखाते हैं -

अर्थ- गुण- पर्यायों के बिना कोई द्रव्य नहीं हो सकता तथा द्रव्य के बिना न गुण होते हैं और न पर्यायें होती हैं ॥ 8 ॥

अब इसी को कहते हैं पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्यायात्मक भेदाभेदस्वरूप है। यद्यपि संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि के भेद से सहित होता है, तो भी सत्ताभेद न होने से द्रव्य - गुण - पर्याय में कथंचित्

अभेदता जाननी चाहिए। जैसे स्पर्श, रस, गंध एवं वर्ण से रहित पुद्गलद्रव्य नहीं होता, उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। जिसप्रकार दूध, दही, मक्खन और घृतादि से रहित गोरस नहीं होता, उसी प्रकार पर्यायों से रहित कोई द्रव्य नहीं होता । इसी प्रकार सहज, नित्य, स्वगुण - पर्यायस्वभावी द्रव्य के बिना गुण-पर्याय नहीं होते अर्थात् जैसे गोरस से रहित दूध, दही, घृतादि नहीं होते, उसीप्रकार द्रव्य के बिना पर्यायें नहीं होतीं। जिसप्रकार पुद्गल से रहित स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं होते हैं, उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं हो सकते । इस तरह गुण-पर्यायों का द्रव्य के साथ तथा द्रव्य का गुण-पर्यायों के साथ अनन्यभूत अव्यतिरिक्त भाव है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि प्रत्येक द्रव्य अपने गुण- पर्यायों तथा गुण- पर्यायें भी निजद्रव्य के बिना नहीं होतीं, अतः शुद्धात्म द्रव्य-गुण- पर्यायस्वरूप निजात्मा को जानकर, शुद्धात्मा से जो अन्य है उस सब द्रव्य-गुण-पर्याय से मैं रहित हूँ, ऐसा जानना चाहिए ।।8 ।।

तीसरे आस्रव अधिकार में श्लोक क्रमांक 7 में नयविभाग से आत्म का कर्तापना इस विषय पर चर्चा की गई है।

शुभाशुभस्य भावस्य कर्तात्मीयस्य वस्तुतः ।
कर्तात्मा पुनरन्यस्य भावस्य व्यवहारतः ॥8॥
सुहासुहस्स भावस्स कत्तप्पकेर वत्थुदो ।
कत्तप्पा पुण अण्णस्स भावस्स ववहारदो ॥8॥

अर्थ - आत्मा निश्चय से अपने शुभाशुभ भावों का कर्ता है और व्यवहार से अन्य अर्थात् पुद्गल भावों का कर्ता है ॥8॥

वह इसप्रकार है – शुद्धनयाश्रित परमोपेक्षा - लक्षण शुद्धोपयोग परिणाम को छोड़कर अशुद्धनिश्चय नयाश्रित अशुद्धोपादान से आत्मा शुभाशुभ परिणामों से परिणमित हुआ शुभाशुभ भावों का कर्ता होता अर्थात् विशिष्ट धर्मानुरागरूप विशुद्धि द्वारा सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतियों के बन्धयोग्य निमित्त कारण शुभभावों का और धर्मानुरागरूप विशुद्धि के नाशक मिथ्यात्वादिरूप तीव्र संक्लेष के द्वारा असातावेदनीय आदि अशुभप्रकृतियों के बन्धयोग्य निमित्तकारण अशुभभावों का आत्मा कर्ता होता है और व्यवहारनय से शुभ अथवा अशुभरूप ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म पर्यायरूप पुद्गलभावों का कर्ता होता है। यहाँ कोई कहे आत्मा तो शुद्धनय से शुद्धभावों का ही कर्ता है, अशुद्धभावों एवं पुद्गल भावों का नहीं, तो यह श्लोक इसका समाधान करनेवाला है, कि संसारी अवस्था में आत्मा अशुद्ध निश्चयनय से अशुद्ध रागादिभावों का एवं व्यवहारनय से पुद्गलभावों का भी कर्ता है, सर्वथा एकान्त नहीं है, ऐसा भावार्थ हुआ ।।8 ।।

पांचवे संवर अधिकार में उभयनय से प्रकट भेदज्ञान संवर को देता है एवं पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कर्म कर्ता भोक्ता विषय पर चर्चा की गई है।

यहाँ जब तक व्यवहारनय से प्रसिद्ध गुणदृष्टि का भी अभाव नहीं किया जाता, तब तक परमसंवर को देनेवाली शुद्धात्मानुभूति प्राप्त नहीं होती, ऐसा भावार्थ जानना चाहिए।।16-17।।[38]
अब परिणामी जीव के द्वारा कौन उत्पन्न और विनष्ट होते हैं ? यह बताते हैं -

ज्ञानदृष्टिचरित्राणि ह्रियन्ते नाक्षगोचरैः ।

क्रियन्ते न च गुर्वाद्यैः सेव्यमानैरनारतम् ॥18॥

उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति जीवस्य परिणामिनः ।

ततः स्वयं स दाता न परतो न कदाचन ॥19॥[39]

अर्थ- ज्ञान- दर्शन - चारित्र इन्द्रिय-विषयों के द्वारा हरे नहीं जाते और न निरन्तर सेवा किये गये गुरुजनों के द्वारा किये जाते हैं॥18 ॥

अर्थ- परिणामी जीव के ये स्वभावतः उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, इसलिए वह जीव स्वयं इनका दाता नहीं है और न पर के द्वारा कभी-भी उत्पाद - व्यय हो सकता है॥19॥

वह इस प्रकार है शुद्धनिश्चयनय से शुद्धात्मद्रव्य के सहभावी ज्ञान - दर्शन - चारित्र गुण संसारावस्था में कर्मों के फलों को भोगने वाले संसारी जीवों के द्वारा इन्द्रिय-विषयों को सेवन करते हुए भी वास्तव में आत्मा के ज्ञानादि- गुण हरण नहीं किये जाते और सद्गुरु का समागम मिलने पर निरन्तर उनके सम्यक् हितोपदेश को सेवन करते हुए भी उनके द्वारा आत्मा के गुण उत्पन्न नहीं किये जाते, अपितु पर्यायार्थिक नय से परिणाम स्वभावी जीव के इन गुणों की पर्यायें स्वभावतः उत्पन्न और विनष्ट होती हैं। वास्तव में वह जीव स्वयं भी इन गुणों का कर्त्ता - हर्ता नहीं है और जब स्वयं जीव भी इन गुणों का करने-हरने वाला नहीं, तब पर के द्वारा इनके उत्पाद-व्यय को कैसे किया जा सकता है ? अर्थात् नहीं किया जा सकता । यहाँ उपादान के कथन की मुख्यता होने से द्रव्य के गुण-पर्याय आदि का कोई भी

---

[38] जयदु जिणागमपंथो एत्थ जाव ववहारणयेण पसिद्धगुणदिट्ठीए वि अभावो ण करिज्जदि ताव परमसंवरं दाइआ सुद्धप्पाणुभूदी ण पप्पोदि त्ति भावत्थो जाणिदव्वो ।।16 - 17॥

[39] णाणदिट्ठिचरित्ताणि हरिज्जति ण खेहि हु ।
करिज्जति गुरूहिं ण सेवतेहि अणारयं ॥18॥
उप्पज्जंति विणस्संति जीवस्स परिणामिणो ।
तदो सयं ण सो दाऊ परदो ण कदाचण॥19॥

कर्ता हर्ता नहीं है, इसका कथन करनेवाले दो श्लोक पूर्ण हुए ।।18-19 ।। अब व्यवहारनय से शरीरादिक परपदार्थ जीव के कहे जाते हैं निश्चय से नहीं, ऐसा प्रतिपादित करते हैं-

शरीरमिन्द्रियं द्रव्यं विषयो विभवो विभुः ।

ममेति व्यवहारेण भण्यते न च तत्त्वतः ॥20॥

तत्त्वतो यदि जायन्ते तस्य ते न तदा भिदा ।

दृश्यते दृश्यते चासौ ततस्तस्य न ते मताः ॥21॥[40]

अर्थ- मेरा शरीर, मेरी इन्द्रियाँ, मेरा द्रव्य, मेरा विषय, मेरी विभूति, मेरा स्वामी ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है न कि तत्त्व से अर्थात् निश्चयनय से ॥20॥

अर्थ- और यदि वे शरीर आदि पर - पदार्थ, उस आत्मा के हैं ऐसा निश्चय से माना जाये, तब आत्मा और शरीर आदि पर - पदार्थ में भेद दिखाई नहीं देना चाहिए किन्तु उन दोनों में भेद दिखाई देता है, इसलिए वे शरीर आदि पर - पदार्थ उस आत्मा के नहीं हैं, ऐसा माना गया है ॥21॥

वह इस प्रकार है – शुद्धनिश्चयनय से ज्ञानशरीरी अतीन्द्रियस्वभावी निजशुद्धात्मद्रव्य से विपरीत व्यवहारनय से संसारदशा में शरीर के साथ आत्मा का अनादि संबंध होने से कर्मोदय से प्राप्त शरीर, इन्द्रियाँ, धनादिक-द्रव्य, इन्द्रियविषय, आज्ञा - ऐश्वर्य आदि वैभव, स्वामी आदि में 'यह मेरा है' ऐसा कहा जाता है, किन्तु इन परद्रव्यादि के संयोग से रहित शुद्धद्रव्य का कथन करने वाले शुद्धनिश्चय नय से ' परद्रव्य मेरा है' ऐसा नहीं कहा जाता ।

यहाँ कोई प्रश्न करे- जब शरीर अनादि से आत्मा के साथ ही है तो शुद्धनय से इसे अपना क्यों नहीं कहा जाता ?

इसका समाधान करते हुए कहा गया है - यदि जड़, अचेतन, शरीरादि आत्मा के हैं ऐसा शुद्धनय से माना जाये, तो चेतन-अचेतनद्रव्य एक हो जायेंगे, अतः शरीरादि और आत्मा में भेद दिखाई नहीं देना चाहिए, किन्तु दोनों द्रव्यों में प्रत्यक्षतः भेद दिखाई देता है, अतः वास्तव में शरीरादि आत्मा के नहीं हैं शुद्धनय से ऐसा माना गया है।

---

[40] सरीरमिंदियं दव्वं विसओ विहवो विभू ।
मम त्ति ववहारेण भण्णदे ण य तच्चदो ॥20॥
तच्चदो जड़ जायंते तस्स ते ण तदा भिदा ।
दिस्सदे दिस्सदे चामू तदो तस्स ण ते मदा ॥21॥

यहाँ जब तक स्व- परद्रव्य का भेद ज्ञात नहीं होगा, तब तक आत्मा परद्रव्य को अपना मानकर अज्ञानी रहेगा, किन्तु जब स्व- परद्रव्य का भेदविज्ञान शुद्धनय से ज्ञात होगा तभी परमसंवर स्वरूप शुद्धात्मानुभूति में लीन होकर मुक्ति को प्राप्त होगा, ऐसा तात्पर्य अर्थ जानना चाहिए।। 20 - 21।।

अब संवर को कौन प्राप्त होता है ? ऐसा उपदेश देते हैं-

विज्ञायेति तयोर्द्रव्यं परं स्वं मन्यते सदा ।

आत्मतत्त्वरतो योगी विदधाति स संवरम् ॥22॥[41]

अर्थ- जो योगी इसप्रकार दोनों नयों से द्रव्यों के स्वरूप को जानकर स्वद्रव्य को स्व-रूप से और परद्रव्य को पर - रूप से हमेशा मानता है, वह आत्मतत्त्व में लीन हुआ संवर को करता है ॥22॥

वह इस प्रकार है श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न निश्चय - व्यवहार दोनों नयों से आत्मा और पुद्गल दोनों द्रव्यों के स्वरूप भेद को जानकर, पश्चात् दोनों नयों से आत्मा के शुद्ध- अशुद्ध स्वरूप के भेदज्ञान को प्राप्तकर स्वद्रव्य को स्वरूप से और परद्रव्य को पररूप से जानता है तथा शुद्ध उपादानकारण के आश्रय से स्व को शुद्धरूप से एवं अशुद्ध उपादानकारण से स्व को अशुद्धरूप से जानकर, पश्चात् अशुद्ध उपादानकारण से मैं आज तक अशुद्ध रहा और रहूँगा ऐसा निर्णयकर अशुद्ध उपादानकारण को त्यागता हुआ, शुद्ध उपादानकारण का आश्रय करता हुआ योगी निज शुद्धात्मस्वभाव में लीन हुआ, निर्विकल्प समाधि से नयों के विकल्पजाल हटाता हुआ, परमसंवर स्वभाव शुद्धात्मानुभूति को धारण करता है।

यहाँ भेदविज्ञान को प्राप्त योगियों के द्वारा समस्त नयों के पक्षपातरूप विकल्पजाल को त्यागकर शुद्ध, बुद्ध, एक परमात्मस्वभावी शुद्धात्मा का आश्रय करके संवर करना चाहिए, ऐसा कथन पूर्ण हुआ ।। 22 ।।

अब उभयनय से शुभाशुभ कर्म का कर्ता - भोक्ता कौन है ? इसका उत्तर देते हैं-

विदधाति परो जीवः किञ्चित् कर्मशुभाशुभम् ।
पर्यायापेक्षया भुंक्ते फलं तस्य पुनः परः ॥23॥
य एव कुरुते कर्म किंचिज्जीवः शुभाशुभम् ।
स एव भजते तस्य द्रव्यार्थापेक्षया फलम् ॥24॥

[41] तेसिं ति जाणिउं दव्वं परं सं मण्णदे सदा ।
अप्पतच्चरदो जोगी करेदि सो य संवरं ॥ 22 ॥

मनुष्यः कुरुते पुण्यं देवो वेदयते फलम् ।
आत्मा वा कुरुते पुण्यमात्मा वेदयते फलम् ॥ 25 ॥
नित्यानित्यात्मके जीवे तत्सर्वमुपपद्यते ।
न किंचिद् घटते तत्र नित्येऽनित्ये च सर्वथा ॥ 26 ॥[42]

अर्थ - पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से कुछ भी शुभाशुभ कर्म करनेवाला जीव दूसरा है और उसका फल भोगनेवाला दूसरा है ॥23॥

अर्थ – द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा जो जीव कुछ भी शुभाशुभ कर्म करता है, उसके फल को वही जीव भोगता है ॥24॥

अर्थ - जैसे मनुष्य पुण्यकर्म को करता है, देव उसका फल भोगता है और आत्मा पुण्यकर्म को करता है, आत्मा ही उसका फल भोगता है ॥25॥

अर्थ - इसलिए जीव को कथंचित् नित्यानित्यात्मक मानने पर उपर्युक्त सब कथन ठीक घटित होता है और सर्वथा अर्थात् एकांत से नित्यानित्य मानने पर उसमें कुछ भी घटित नहीं होता॥26॥

वह इस प्रकार है जैनमत में पर्यायार्थिक एवं द्रव्यार्थिक नयों के द्वारा वस्तुस्वरूप जाना जाता है। पर्यायार्थिक नय का विषय पर्याय है, द्रव्यार्थिक नय का द्रव्य है । प्रत्येक वस्तु द्रव्य-गुण-पर्यायात्मक है अतः पर्याय ही प्रयोजन है जिसका ऐसे पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा मनुष्य पर्याय में किया गया जो भी शुभाशुभ कर्म है वह वास्तव में उसी पर्यायवाले जीव के द्वारा न भोगा जाकर दूसरी पर्यायवाला होने से दूसरे पर्यायवाले जीव के द्वारा भोगा जाता है। ऐसा क्यों ? क्योंकि अर्थपर्याय एक समयमात्र है और विभाव व्यंजनपर्याय नर-नारक - देवादि पर्यायरूप है, अतः अर्थपर्याय की अपेक्षा जिस एक समयवर्ती मनुष्य पर्यायवाले जीव ने शुभाशुभ कर्म किया, दूसरे समय में उस मनुष्य पर्यायवाले जीव का सद्भाव नहीं है अथवा विभावव्यंजन मनुष्य पर्यायवाले जीव ने जो शुभाशुभ कर्म किये, उनका फल विभावव्यंजन मनुष्यपर्याय के अभाव होने पर शुभकर्मरूप विभावव्यंजन देव पर्यायवाले जीव के द्वारा भोगे जाने से कहा जाता है 'करनेवाला जीव दूसरा है और भोगनेवाला जीव दूसरा है।' इसप्रकार पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा जीव अनित्य है ।

[42] करेदि य परो जीवो किंचि कम्मसुहासुहं । पज्जायेण हि भोत्ता ए फलं तस्स पुणो परो ॥23॥
जो एव कुणदे कम्मं किंचि जीवो सुहासुहं । सो एव भजदे तस्स दव्वत्थिगेण जे फलं ॥24॥
मणुसो कुणदे पुण्णं देवो वेदिज्जदे फलं । अप्पा वा कुणदे पुण्णं अप्पा वेदिज्जदे फलं ॥25॥
णिच्चाणिच्चप्पगे जीवे तं सव्वं उववज्जदे । ण किंचि घडदे तत्थ णिच्चाणिच्चे हु सव्वहा ॥26॥

पुनः द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है, ऐसे द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा किसी भी पर्याय में रहनेवाला जो जीव शुभाशुभ कर्म करता है, किसी भी अन्य पर्याय में रहनेवाला वही जीव उस कर्म के फल को भोगता है अर्थात् मनुष्य पर्यायवाले जिस आत्मा के द्वारा शुभाशुभ कर्म किये गये, देव पर्यायवाले उसी आत्मा के द्वारा पुण्यकर्म के फल को भोगा जाता है। ऐसा क्यों? क्योंकि द्रव्य सर्वपर्यायों में अन्वय होता हुआ तन्मय रहता है, अतः द्रव्यार्थिकनय से आत्मा नित्य है।

इस प्रकार जीव को कथंचित् नित्यानित्यात्मक मानने पर ही यह कथन ठीक घटित होता है। सांख्यमती की तरह सर्वथा नित्य अथवा क्षणिकवादी बौद्धों की तरह सर्वथा अनित्य, इसप्रकार एकान्त रूप मानने पर यह कुछ भी घटित नहीं होता ।